ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 86-89

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

भारतीय संस्कृति एक विरासत, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद तथा वसुधैव कुटुम्बकम्

जनार्दन झा

असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, सलेमपुर, देवरिया (उ0प्र0), भारत

Received- 17.02.2020, Revised- 22.02.2020, Accepted - 27.02.2020 E-mail: drjanardanjha@gmail.com

सारांश : *भारत एक विशालकाय देश है। यहाँ अनेक सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। अन्य देशों की अपेक्षा भारत की संस्कृति अलग है। महर्शि कपिल मुनि ने भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में कहा कि –*

"सत्याहिंसागुणैः श्रेष्ठा, विश्वबन्धुत्वशिक्षिका।
विश्वशान्तिसुखाधात्री, भारतीया हि संस्कृतिः।।"

अर्थात् हमारी भारतीय संस्कृति सत्य, अहिंसा गुणों के द्वारा श्रेष्ठ है, विश्व को बन्धुत्व की शिक्षा देने वाली है, तथा विश्व को शान्ति और सुख प्रदान करने वाली है। संस्कृति के द्वारा अपना तथा आत्मा का संस्करण एवं परिष्करण संभव होता है। अन्तःकरण में विद्यमान मन के मल को, चांचल्यभाव को और आत्मा के अज्ञानावरण को संस्कृति दूर करती है। संस्कृति की महत्ता के विषय में कहा जाता है कि यह आत्मा को प्रसन्न करती है, दुर्भावों का दमन करती है, दुर्गुणों को नष्ट करती है, पापों को दूर करती है, दुःख और द्वन्द्व को जलाती है, ज्ञान की ज्योति जलाती है, अविद्या रूपी अन्धकार को हटाती है, भविष्य को सुन्दर बनाती है, सुख के साधन को सुदृढ़ करती है, गुणों का आगमन करती है, सत्य की स्थापना करती है तथा शन्ति प्रदान करती है। संस्कृति केवल एकाकी रूप में ही नहीं, अपितु समग्ररूप में मानव का उपकार करती है। संस्कृति राष्ट्रवाद की परिकल्पना को भी भलीभाँति साकार करती है। विश्वहित की बात हो, विश्व बन्धुत्व की बात हो चाहे फिर विश्व के उपकार की बात हो यह सब संस्कृति के आदर्श स्वरूप से ही सम्भव हो सकता है।

कुंजीभूत शब्द– विशालकाय, सम्प्रदाय, भारतीय संस्कृति, अहिंसा, संस्करण, परिष्करण, अन्तःकरण, परिकल्पना।

भारत की प्रतिष्ठा दो चीजों से है– संस्कृत तथा संस्कृति। जैसा कि कहा गया है– "भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा।" संस्कृत है, तो संस्कृति है। दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। संस्कृति का आधार संस्कृतभाषा है। वेद, पुराण, उपनिशद्, रामायण तथा श्रीमद्भगवद्गीता इत्यादि ग्रन्थ संस्कृत भाषा में निबद्ध है। वेद ज्ञानराशि है तो वहीं उपनिषद् तथा गीता दर्शन है। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है – 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'। संस्कृति को समझने हेतु ज्ञान एक उत्कृष्ट साधन है। उत्कृष्ट ज्ञान हमें वेदपुराणों से प्राप्त होता है। संस्कृति को सम्यक् जानने हेतु संस्कृत की जानकारी परमावश्यक है। कहा गया है – 'संस्कृतिः संस्कृताश्रया' अर्थात् संस्कृति संस्कृत के आश्रय में है।

संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कार शब्द से हुई है। संस्कृति से मानव का सर्वांगीण विकास होता है। यह विकास आन्तरिक तथा बाह्य दोनों रूपों में दिखाई पड़ता है। इसके तहत मानव का खान–पान, आचार–विचार, चिन्तन–मनन, रहन–सहन, वेश–भूशा, बोली–भाषा, कला–कौषल एवं जाति–समाज इत्यादि का समावेश होता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होने वाले सामाजिक ज्ञान, धर्म–दर्शन, विश्वास, मनोरंजन तथा आनन्द का स्वभाव, नैतिकता, व्यवहार, शिष्टाचार के नियम, मांगलिक कार्यों को सम्पादित करने की विधि और वह समस्त सीखा हुआ व्यवहार है, जिसे हम संस्कार की संज्ञा देते है, उसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में संस्कृति की संज्ञा दी गयी है। संस्कार ही मानव को कर्तव्याबोध कराता है। भारतीय समाज में मानव के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए सोलह संस्कारों की व्यवस्था की गयी है, जो इस प्रकार है – गर्भाधान–संस्कार, पुंसवन–संस्कार, सीमन्तोन्नयन–संस्कार, जातकर्म–संस्कार, नामकरण–संस्कार, उपनयन–संस्कार, वेदारम्भ–संस्कार, समावर्तन–संस्कार, विवाह–संस्कार, वानप्रस्थ–संस्कार, सन्यास–संस्कार एवं अन्त्येष्टि–संस्कार सम्मिलित हैं। विधि पूर्वक उन संस्कारों को करने से व्यक्ति में विलक्षण एवम् अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है। संस्कृति ऐसा शब्द है, जिससे व्यापक तथा गम्भीर अर्थ का बोध होता है। इसका साक्षात् सम्बन्ध संस्कार से है, जिसका सामान्य अर्थ है – संयोजक करना। भारतीय संस्कृति का संस्कार लोक संस्कृति से ही हुआ है।

भारतीय संस्कृति की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

धर्म प्रधान संस्कृति – धर्म प्रधान संस्कृति होने के कारण पशुओं से मानव अलग होता है। इसीलिए कहा है:– "धर्मो हि तेशामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः"। यहाँ धर्मपद से किसी सम्प्रदाय विशेष की चर्चा विवक्षित नहीं है। शास्त्रों में, ग्रन्थों में जगद् के उद्धार के

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

लिए जो उपाय बतलाए गए हैं, वही आख्यान तथा व्याख्यान इत्यादि तत्व धर्मपद का अर्थ है। अतः इस सम्बन्ध में कहा गया है कि –

"धारणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।"

भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकी भावना का महत्वपूर्ण स्थान है। यह जीवन केवल उपभोग के लिए ही नहीं है, अपितु मोक्षावाप्ति के लिए भी है। अध्यात्म के द्वारा मनुष्य देवत्व पद को प्राप्त कर लेता है। वह सभी को समत्व की दृष्टि से देखता है। समग्रता में भी वह बार–बार इस बात को सोचता है कि प्राणिमात्र को भी उसी परमपिता ईश्वर ने ही बनाया है। यह पूरा विश्व ईश्वर के द्वारा व्याप्त है, जैसा कि श्रीमद्भागवत पुराण में कहा गया है –

"विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।
हिंस्रः स्वपापेन खलः साधुः भयाद् विमुच्यते"।।

अर्थात्, माया रूपी भगवान विष्णु के द्वारा यह चराचर जगत् सम्मोहित है। इस चराचर सम्पूर्ण जगत् में मनुष्य हिंसा तथा अपने द्वारा किए गए पापों से दुर्जन (दुष्ट) हो जाता है, तो वहीं दूसरी ओर सज्जन हिंसा तथा पापों से डरकर भवसागर से पार हो जाता है। ईशावास्योपनिशद् के अनुसार – 'ईशावास्यामिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्'। अर्थात् इस संसार में जो कुछ हमें दिखाई पड़ता है, वे सब ईश्वर के द्वारा व्याप्त है। यदि पारलौकिकी भावना की भारतीय संस्कृति की दृष्टि से विचार किया जाय तो यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विनश्वर है, केवल कीर्तिमात्र ही अविनाशी है। भौतिक विषय अन्त तक मानव को परिताप देता है। भौतिक विषयों के आश्रयण करने से मनुष्य का पतन सुगम हो जाता है। इतना ही नहीं दुःख की प्राप्ति सुलभता से होती है, लेकिन सुख तो सपना हो जाता है।

भारतीय संस्कृति सदाचार – पालन को अत्यधिक महत्व देती है। 'आचारः परमो धर्मः संस्कृत का यह सूक्तिवाक्य उक्त बात को अक्षरशः प्रमाणित करता है। सदाचार जीवन की सर्वोत्तम तपस्या है, अतः इसका पालन करना चाहिए। महाभारत में भी कहा गया है–

'वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः'।।

अर्थात्, मानव को अपने चरित्र का संरक्षण प्रयासों से करना चाहिए। मानव के पास धन तो आता – जाता रहता है, परन्तु चरित्र के क्षीण होने परवह पुनः वापस नहीं आता है। मनुष्य को बड़े ही यत्न से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए; जिससे इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है। सदाचार पालन में ब्रह्मचर्य का विशेष महत्व है। ब्रह्मचर्य व्रत के आश्रयण से शारीरिक उन्नति तो होती ही है साथ ही मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उन्नति भी प्राप्त होती है। ब्रह्मचर्य का जो भी पुरूष निष्ठापूर्वक पालन करता है, वह मृत्यु को भी वश में कर सकता है। यही कारण है कि देवता अमरत्व को प्राप्त हो गये। जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है – "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत'। ब्रह्मचर्य से आनन्द की प्राप्ति होती है। सदाचार का पालन करते समय विशेष रूप से चरित्ररक्षा, शीलरक्षा, संयम, दम तथा मन के वशीकरण पर ध्यान देना चाहिए। भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था को अत्यधिक महत्व देते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों के विषय में बतलाया गया है। सभी वर्णों के कर्तव्य अलग–अलग बतलाए गए हैं। वेद तथा वेदांगों का अध्ययन और अध्यापन यज्ञ करना और यज्ञ कराना, विद्यारूपी धन का दान करना तथा धनादि दान को स्वीकार करना ब्राह्मण के कर्तव्य हैं। जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है –

'अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्रह्मकर्म स्वभावजम्"।।

देश तथा समाज की रक्षा करना क्षत्रिय का परम धर्म है। महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंशम् में कहा कि –

'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेशु रूढ़ः'।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने क्षत्रिय के कर्तव्य इस प्रकार बताया –

"शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्"।।

देश और जनता का जब मनोरंजन होता है, तब राजा सुशोभित होता है। कहा भी गया है –'राजा प्रकृतिरंजनात्'। कृषि कार्य करना, गोरक्षा करना तथा व्यवसायिक कार्य करना वैष्य के प्रमुख कर्म बतलाए गए हैं।

'कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्'। भगवान श्रीकृष्ण ने उक्त बातें श्रीमद्भगवद्गीता में कही है। इन कार्यों को करने से वैश्यवर्ण को अभ्युदय प्राप्त होता है। श्रम के द्वारा जो कार्य होता है तथा जो शारीरिक कार्य होता है वही शूद्र का प्रधान कर्तव्य कहलाता है। जैसा कि भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है –

'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।

जो जिस प्रकार का कर्म करता है वह उसी प्रकार के वर्ण को प्राप्त करता है। दूसरी ओर आर्य संस्कृति में वर्णव्यवस्था को स्वीकार की जाती है, जातिप्रथा को नहीं स्वीकार की जाती है। जन्म से जाति तथा कर्म से वर्ण की

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

उत्पत्ति आर्य संस्कृति में मानी जाती है।

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिए चार आश्रमों की व्यवस्था की गयी है। इस संस्कृति में त्याग और भोग दोनों को महत्व देकर आध्यात्मिकता और भौतिकता में समन्वय का समीचीन प्रयास किया गया है। इसलिए मनुष्य को स्वकर्तव्य का अनुशरण करते हुए एवं विश्व की वस्तुओं का त्याग पूर्वक भोग करते हुए मुक्ति प्राप्त करने को कहा गया है। इसी उद्देश्य की सम्पूर्ति के लिए समाज में एक क्रमबद्ध जीवन–व्यवस्था की अत्यधिक आवश्यकता महसूस हुई। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को चार भागों में विभक्त किया गया एवं प्रत्येक भाग के लिए कुछ नियम का निर्धारण किया गया। इसी व्यवस्था को आश्रम–व्यवस्था की संज्ञा दी गई। महर्षि वेदव्यास ने इस व्यवस्था को चार खण्डों वाली एक सोपान बतलाया है, जो ब्रह्म की ओर ले जाने वाली है। श्री पी0एन0 प्रभु ने लिखा है कि "आश्रम–व्यवस्था को जीवन के अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति हेतु मनुष्य जीवन–यात्रा के मध्य पड़ने वाले विश्राम स्थलों के रूप में समझना चाहिए। इस व्यवस्था में मानव की आयु सौ वर्ष मानी गयी है एवं उसकी इस आयु को चार समान भागों में बाँट दिया गया, जिनको आश्रम की संज्ञा दी गयी। इस तरह प्रत्येक आश्रम की अवधि 25 वर्ष सुनिश्चित की गयी। इन आश्रमों में निष्ठापूर्वक रहता हुआ मनुष्य पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति करता है।

1–ब्रह्मचर्य आश्रम – ब्रह्मचर्य जीवन का सर्वप्रथम आश्रम है। उपनयन संस्कारोपरान्त ब्रह्मचर्याश्रम प्रारम्भ होता है। ब्रह्मचारी को गुरूकुल में रहना पड़ता था, जहाँ उसे एक निश्चित दिनचर्या का पालन करना होता था। ब्रह्मचर्य दो प्रकार का होता है – (क) नैष्ठिक, (ख) उपकुर्वाण। नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिए ब्रह्मचर्य पर्यन्त पालन का विधान था।

2– गृहस्थ आश्रम – इस आश्रम के विषय में मनु कहते हैं कि ब्रह्मचारी तीन वेद, दो वेद या एक वेद का अध्ययन करके अस्खलित ब्रह्मचर्य के साथ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे–**"वेदानधीत्य वेदौ वावेदं वापि यथाक्रमम्।**
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्"।।

3– वानप्रस्थ आश्रम – गृहस्थाश्रम का सम्यक् 25 वर्षों तक पालन करने के पश्चात् 50 वर्ष की अवस्था होने के उपरांत मानव को वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहिए। इस आश्रम में प्रवेश करने के लिए व्यक्ति में अहिंसा, दया, सत्य, सहानुभूति, करूणा तथा त्यागादि सद्गुण होने आवश्यक हैं। मनुस्मृति में कहा गया है –

"एवं गृहस्थाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः"।।

अर्थात् इस प्रकार ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहस्थाश्रम का कर्ता द्विज गृहस्थाश्रम में ठहरकर निश्चितात्मा तथा यथावद् इन्द्रियों को जीत कर वन में बसे।

4– सन्यास आश्रम – सन्यास का अर्थ है – निर्वाण। वानप्रस्थ आश्रम का अच्छी प्रकार पालन करने के पश्चात् मनुष्य को आयु के चतुर्थ भाग में सभी आसक्तियों को छोड़कर परिवाट् (सन्यासी) होना चाहिए। इस आश्रम में प्रविष्ट होते हुए मनुष्य को यह प्रतिज्ञा करनी होती थी– **"पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा या परित्यक्ता मतः सर्वेभ्योऽभयमस्तु"।**

अर्थात् मैने पुत्रविषयक, धनविषयक तथा यशविषयक समस्त इच्छाओं का परित्याग कर दिया है। मुझसे प्रत्येक व्यक्ति को अभय प्राप्त है। आश्रम व्यवस्था भारतीय समाज के लिए वरदान है। यह मनुष्य का सर्वांगीण विकास करती है। इस व्यवस्था ने भारतीय समाज को पूर्ण प्रभावित किया, क्योंकि यह सैद्धान्तिक व्यवस्था ही नहीं, बल्कि एक पूर्ण व्यवहारिक व्यवस्था भी थी।

कर्मवाद का भारतीय संस्कृति में अतिविशिष्ट स्थान है। हमेशा ही मनुष्य को अनासक्ति भाव से कर्म करना चाहिए। किए गए कर्म का फल निश्चित मिलता है। सत्कर्म से पुण्य प्राप्त होता है, जबकि दुष्कर्म से पाप आता है। जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है– **'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनैव'।** पुर्नजन्मवाद भारतीय संस्कृति में अपना स्थान रखता है। कर्म के अनुरूप सभी जीव–जन्तुओं का पुर्नजन्म होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च'।** अर्थात् जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु निष्चित है, एवं जिसकी मृत्यु होती है, उसका जन्म निष्चित है। मोक्ष एक ऐसा विषय है, जिसको जानने की अभिलाषा हमेशा ही ऋषियों, मुनियों तथा ज्ञानियों को रही है। सबसे बड़ा पुरूषार्थ मोक्ष प्राप्त करना ही होता है। मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता है। भारतीय संस्कृति में वेदों के प्रमाणीकरण को अत्यधिक महत्व दिया गया है। चारों वेद स्वतः ही प्रमाण स्वरूप हैं। अन्य ग्रन्थ भी प्रमाण के रूप में उपलब्ध हैं, अतः उन ग्रंथों को परतः प्रमाण रूप कहा जाता है। भारतीय संस्कृति में यज्ञ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पंच यज्ञ में सर्वप्रथम स्थान ब्रह्मयज्ञ का है। क्रमशः देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ तथा अतिथियज्ञ को ब्रह्मयज्ञ के पश्चात् महत्वपूर्ण स्थान शास्त्रों में बताया गया है। सत्य का परिपालन करना हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान है। मन, वचन तथा कर्म से अहर्निश सत्य को स्वीकार करना चाहिए। हमेशा जीवन में

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16 YEAR- June. -2020

सत्य का व्यवहार करना चाहिए। सत्य ही सर्वदा विजय को प्राप्त करता है असत्य कभी नहीं। इसीलिए मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है 'सत्यमेव जयते नानृतम्'। इसी प्रकार अहिंसा का पालन, त्याग का महत्व, तपोमय जीवन एवं मातृपितृगुरूभक्ति का भी भारतीय संस्कृति में विशिष्ट स्थान है।

राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद वैसे तो अपने आप में पूर्ण लगता है, परन्तु सोचने पर ज्ञात होता है कि राष्ट्रवाद स्वयं में ही परिपूर्ण है। राष्ट्रवाद के साथ किसी विशेषण को जोड़कर एक नई संज्ञा के निर्माण की जरूरत क्या है, यह समझ से परे है। मेरा अभिमत है कि भारत के अलावा किसी भी दूसरे देश का व्यक्ति राष्ट्रवादी नहीं हो सकता परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वह देशभक्त नहीं हो सकता। राष्ट्रवाद की जड़ में जाने के लिए देश, राज्य तथा राष्ट्र की संकल्पना को पृथक्–पृथक् समझना परमावश्यक है। देश एक भौगोलिक इकाई है, और राज्य देश का राजकीय घटक है। देश में एक से अधिक राज्य भी हो सकते हैं, जबकि राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है, जिस हेतु मातृभूमि, मानव तथा सरकार पर्याप्त नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक एकता की अनुभूति आवश्यक है। देश राष्ट्र के शरीर का एक भाग हो सकता है, जबकि संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है।

आज के बदलते परिवेश में विश्व बन्धुत्व की नितांत आवश्यकता है। यह संसार सुख–दुख से युक्त है।सुख के उपरान्त दुख तथा दुख के उपरान्त सुख आता है। इस दुख का निरोध क्या हो सकता है? दुख के निरोध हेतु इस जगत में शान्ति तथा धर्म की संस्थापना की अनिवार्यता होनी चाहिए। यदि मानव अन्य मानव को अपने बन्धुत्व की दृष्टि से देखेगा तो परशोषण की प्रक्रिया निश्चित ही समाप्त हो जाएगी। इसीलिए ज्ञानी समत्व बुद्धि का आश्रयण करते हुए हमेशा इस संसार के हितचिन्तन तथा सर्वलोक कल्याण के विशय में चिंतन करते रहते हैं। इसीलिए हितोपदेश में कहा गया है –

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"।।

यह कहा जा सकता है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना की सार्थकता तभी सिद्ध होगी, जब सभी लोग चाहे वो देश के हों या विदेश के हों, एक ही परमात्मा के हम सब सन्तान हैं, ऐसी उदार भावना को ध्यान में रखते हुए कार्य करेंगे। विश्व धर्म की भावना विश्व कल्याण की जड़ है। जैसा कि ध्यान में रखते हुए कार्य करेंगे। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है – 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। राष्ट्रवाद की अवधारणा संस्कृति से ही सम्पूरित होती है। भारतीय संस्कृति एक अद्वितीय संस्कृति है। इसी संस्कृति से हम संस्कारवान् मूल्यों का विनिर्माण करते हैं। यह संस्कृति मानव का सर्वांगीण विकास करती है। इस संस्कृति ने भारतीय समाज को पूर्ण प्रभावित किया है, क्योंकि यह संस्कृति सैद्धान्तिक ही नहीं, अपितु एक पूर्ण व्यवहारिक भी है। संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है। इसी संस्कृति में सर्वोदय भावना की साकार परिकल्पना की गयी है–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पष्यन्तु मा कष्चिद् दुःखभाग्भवेत्"।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संस्कृति – डॉ0 यशवीर सिंह तथा श्रीमती जयन्ती देवी
2. निबन्धशतक – डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी
3. नीतिशतक – भर्तृहरि
4. योगदर्शन – पतंजलि
5. मनुस्मृति – मनु
6. अथर्ववेद –
7. श्रीमद्भगवद्गीता – वेदव्यास
8. रघुवंशम् – कालिदास9. हितोपदेश – नारायण पंडित
10. वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी – भट्टोजीदीक्षित
11. लघुसिद्धान्तकौमुदी – वरदराजाचार्य
12. महाभारत – महर्षि वेदव्यास
13. किरातार्जुनीयम् – भारवि
14. सांख्यदर्शन – महर्षि कपिल
15. सांख्यप्रवचनसूत्र – महर्षि कपिल
16. वाल्मीकि रामायण – ब्रह्मर्षि वाल्मीकि
17. वैदिक साहित्य का इतिहास – आ0 बलदेव
18. संस्कृत – साहित्य का विशद् इतिहास –पारसनाथ

*****